भक्तिकाल तथा भक्तिकाव्य का स्वरूप

हिन्दी साहित्य के इतिहास का द्वितीय चरण भक्तिकाल के नाम से जाना जाता है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भक्तिकाल की समय सीमा संवत् 1375 वि० से संवत् 1700 वि० (1318 ई० से 1643 ई०) तक मानी है। आचार्य शुक्ल के अनुसार इस काल खण्ड में उपलब्ध रचनाओं में 'भक्ति' भाव की प्रधानता है, अतः इसे भक्तिकाल कहना उचित है।

भक्तिकाल का विवेचन करने से पूर्व भक्ति भावना की परम्परा और परिवेश की संक्षिप्त जानकारी कर लेना आवश्यक है। 'भक्ति' शब्द का सर्वप्रथम उल्लेख 'उपनिषद्' में मिलता है। दक्षिण भारत में द्रविड़ लोगों में भक्ति परम्परा का सूत्रपात ईसा से कई शताब्दी पहले ही हो चुका था। ईस्वी सन् के प्रारम्भ में उत्तर और दक्षिण की भक्ति परम्पराओं का मिलन हो चुका था। 'पूजा' को भक्ति का प्रमुख साधन माना गया। संहिताओं ने देवालयों के निर्माण एवं उनमें आराध्य देव की प्रतिष्ठा तथा विधिवत् पूजन-अर्चन का मार्ग प्रशस्त किया। दक्षिण में आलवार भक्तों की परम्परा 7वीं शती से बराबर चली आ रही थी। 'आलवार' वस्तुतः वैष्णवों का तमिल नाम है। शैवों को वहाँ 'नायनमार' कहा जाता है। आलवारों ने वेद, उपनिषद् एवं गीता से विचार ग्रहण किए और पद शैली में गीत लिखे जो अत्यन्त भावपूर्ण तमिल भाषा में लिखे गए हैं। आलवार भक्तों की संख्या 12 मानी गई है तथा इनके पदों का संकलन 'दिव्य प्रबन्धम्' नाम से किया

गया है, जिसमें लगभग चार हजार (4000) पद हैं।
डॉ० जॉर्ज ग्रियर्सन ने भक्ति आन्दोलन को 15वीं शती का धार्मिक पुनर्जागरण कहा है। उनके अनुसार,- "इस युग में धर्म ज्ञान का नहीं बल्कि भावावेश का विषय हो गया था।" इस प्रकार इस काल के लिए जो नाम दिए गए हैं, उनमें भक्तिकाल ही सर्वाधिक सहज, सरल एवं प्रवृत्तिमूलक होने से स्वीकार किया गया है। 'भक्तिकाल' नामकरण से एक तो इस बात का बोध होता है कि इस कालखण्ड में 'भक्तिभाव' की प्रधानता रही, साथ ही यह नामकरण इस काल के कवियों को भक्त कवि के रूप में प्रतिष्ठित करता है, जो पूर्णतः उपयुक्त है।
आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भक्ति आन्दोलन के सूत्रपात के लिए तत्कालीन धार्मिक, राजनीतिक परिस्थितियों को उत्तरदायी माना है। उन्होंने धर्म की रसात्मक अनुभूति को 'भक्ति' कहा है। भक्ति सारे जन समुदाय की सम्पत्ति है जिसका सूत्रपात महाभारत काल में और विस्तृत प्रवर्तन पुराण काल में हुआ। विद्वानों ने ब्रह्मसूत्रों, उपनिषदों, गीता पर भाष्य प्रस्तुत कर परम्परागत भक्ति मार्ग के सिद्धांत पक्ष का पर्याप्त विकास किया। आचार्य शुक्ल भक्ति भाव का मूल स्रोत दक्षिण भारत को मानते हैं। उत्तर भारत में मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना हो जाने से हिन्दू जनता में निराशा और अवसाद की भावना घर कर गई थी, जिससे भक्तिभाव को यहाँ फैलने का उपयुक्त अवसर मिला। उनके अनुसार "भक्ति आन्दोलन की जो लहर दक्षिण से आई उसी ने उत्तर भारत की परिस्थिति के अनुरूप

हिन्दू-मुसलमान दोनों के लिए एक सामान्य भक्ति मार्ग की भावना कुछ लोगों में जगाई।" महाराष्ट्र के प्रसिद्ध संत नामदेव इस प्रकार की भक्ति भावना का प्रचार प्रसार कर रहे थे।

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी भक्ति आन्दोलन का प्रारम्भ हिन्दुओं के पराजित मनोवृत्ति को नहीं मानते। वे कहते हैं- "मुसलमानों के अत्याचार से यदि भक्ति की भावधारा को उमड़ना था तो पहले उसे सिन्ध में और फिर उसे उत्तर भारत में प्रगट होना चाहिए था, पर हुई दक्षिण में।" इसी सन्दर्भ में वे आगे कहते हैं कि "यदि भारत में मुस्लिम साम्राज्य स्थापित न हुआ होता तो भी इस साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है।"

भक्ति भावना मूलतः दक्षिण भारत में उत्पन्न हुई। इस सम्बन्ध में कहा गया है कि - "भक्ति द्राविड़ी उपजी लाए रामानन्द।" भक्ति का जो स्रोत दक्षिण भारत से धीरे-धीरे उत्तर भारत की ओर आ रहा था उसे राजनीतिक परिवर्तन के कारण शून्य पड़ते हुए जनता के हृदय क्षेत्र में फैलने के लिए पूरा स्थान मिला।

वैष्णव धर्म मूलतः भक्ति प्रधान है। इसी प्रकार शैव धर्म में पाशुपत, लिंगायत, वीरशैव, कश्मीरी शैव सम्प्रदाय में शिव पूजा का विधान है। शिव को योग साधना का प्रवर्तक तथा आदि गुरु कहा जाता है। वस्तुतः शाक्त, वैष्णव एवं शैव धर्म का भक्ति आन्दोलन में

भारतीय जीवन बीमा निगम
LIFE INSURANCE CORPORATION OF INDIA

पूरा योगदान है। वैष्णव धर्म ने भागवत सम्प्रदाय के रूप में नेतृत्व किया और इसके माध्यम से भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। हमारे प्राचीन साहित्य में भक्ति सूत्र भी है, जिनमें भक्ति का सांगोपांग विवेचन है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भक्ति का सूत्रपात करने का श्रेय आलवार भक्तों को दिया है। अतः यह कहा जा सकता है कि भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात किसी एक कारण से नहीं हुआ। इस सम्बन्ध में यह कहना उचित होगा कि भक्ति का मूल स्रोत दक्षिण भारत है तथा 'भक्तिकाल' तक आते-आते उत्तर भारत की राजनीतिक परिस्थितियाँ इस प्रकार की हो गई थीं कि उसे यहाँ फैलने का पूरा-पूरा अवसर मिला। विभिन्न आचार्यों रामानुजाचार्य, रामानन्द, वल्लभाचार्य, नामदेव, जयदेव आदि ने भी इसके प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया।

भक्तिकाल को सामान्यतः दो भागों में विभक्त किया गया है — निर्गुण काव्यधारा एवं सगुण काव्यधारा। पुनः इन दोनों धाराओं की दो-दो शाखाएँ हैं। निर्गुण काव्यधारा के अन्तर्गत — ज्ञानाश्रयी शाखा एवं प्रेमाश्रयी शाखा तथा सगुण काव्यधारा के अन्तर्गत — रामभक्ति काव्य एवं कृष्ण भक्ति काव्य है।

ज्ञानाश्रयी शाखा के कवियों को संत कवि कहा जाता है तथा इस शाखा के प्रतिनिधि कवि कबीर हैं। प्रेमाश्रयी शाखा के कवियों को सूफी कवि कहा जाता है। इस काव्यधारा के प्रतिनिधि-कवि हैं — मलिक मुहम्मद जायसी। प्रेमाश्रयी शाखा को प्रेमाख्यानक काव्य परम्परा, प्रेममार्गी शाखा तथा

भारतीय जीवन बीमा निगम
LIFE INSURANCE CORPORATION OF INDIA

सूफी धारा के नाम से भी जाना जाता है।
इसी प्रकार रामकाव्य परम्परा के प्रतिनिधि
कवि हैं — गोस्वामी तुलसीदास और कृष्ण काव्य
परम्परा के प्रतिनिधि कवि हैं — सूरदास। स्पष्ट
है कि भक्तिकाल के चार प्रमुख कवि — कबीर,
जायसी, तुलसीदास और सूरदास क्रमशः सन्त काव्य,
सूफी काव्य, रामकाव्य और कृष्ण काव्य परम्परा
का प्रतिनिधित्व करते हैं।